Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
A UGC CARE listed Journal
ISSN 2320–7175 | Volume 10, Issue 01, January-June 2022
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org © The Author(s) 2022

पं. भातखण्डे के 'श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्' का रागाध्याय: एक अध्ययन

PROF. LAWANYA KIRTI SINGH 'KABYA'

Dean, Faculty of Fine Arts. Ex-Head, Univ. Deptt. of Music & Dramatics
Lalit Narayan Mithila University, Darbhanga, Bihar

सारांश

पं. विष्णु नारायण भातखण्डे उत्तर भारतीय संगीत के उद्धारक और संवर्द्धक थे। पं. भातखंडे ने अनेक ग्रन्थों की रचनाएँ भी की, यथा- श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्, अभिनवरागमंजरी, अष्टोत्तरताललक्षणम्, हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति (चार भागों में), क्रमिक पुस्तकमालिका, (छः भागों में), लक्षणगीतसंग्रह, स्वरमालिका, गीतमालिका आदि। उनके द्वारा किए जा रहे इन उल्लेखनीय कार्यों में अनेक अन्य विद्वान विभूतियों ने उनका साथ दिया, जिससे महत्वपूर्ण कार्य पूर्ण हो सके। संगीत के शास्त्रानुसन्धान में अप्पा तुलसी, संकलन-कार्य में रामपुर के नवाब और वजीर खाँ, जयपुर के मुहम्मद अली खाँ, लखनऊ के नवाब अली खाँ, सम्पादन कार्य में द.के. जोशी, श्रीकृष्ण नारायण रातनजनकर, प्रकाशन-कार्य में भालचन्द्र सीताराम सुकथनकर आदि। पंडित जी ने प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रन्थों के अध्ययन पर विशेष बल दिया, उन्होंने भरत, नारद, शाङ्गदेव, रामामात्य, सोमनाथ, पाश्वदेव, पुण्डरीक विट्ठल, अहोबल, लोचन आदि के ग्रन्थों का विस्तृत अध्ययन किया। तदुपरान्त प्राचीन चिन्तन तथा मान्यताओं का प्रयोग की प्रचलित धारा में सामंजस्य स्थापित करने का बहुमूल्य कार्य सम्पादित किया। इस अध्ययन-मनन-चिन्तन का ही परिणाम 'श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्' है। इस ग्रन्थ का लेखन-कार्य पंडित जी ने अपने 'चतुर पंडित' उपनाम से किया है। प्राचीन ग्रन्थों (संस्कृत) के अनेक उल्लेखनीय उद्धरणों द्वारा तत्कालीन प्रचलित संगीत के स्वरूप तथा दस थाटों में वैज्ञानिक आधार देते हुए राग-रागिनियों को समाहित किया है। इसमें संगीत के उन सिद्धान्तों और महत्त्वपूर्ण रागों का वर्णन है जो आज सर्वमान्य भी हैं।

उद्देश्य- पं. भातखण्डे द्वारा उल्लिखित रागों की चर्चा 'श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्' ग्रन्थ के माध्यम से करना व इस अध्याय में वर्णित तत्त्वों के सन्दर्भ में शास्त्र और क्रियात्मकता में परस्पर तारतम्य हेतु पं. भातखण्डे के निर्देशों का अध्ययन प्रस्तुत करना है।

बीज शब्द: 'श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्', ग्रन्थ, संगीत, रागाध्याय, राग, मेल

भारतीय संगीताकाश के देदीप्यमान सूर्य संगीत संवर्द्धक पं. विष्णु नारायण भातखण्डे का उदय ऐसे काल-खण्ड में हुआ जब संगीत को संरक्षण की बहुत आवश्यकता थी, जब संगीत अनेक झंझावातों से घिरा हुआ था। धार्मिक भावनों से जुड़ा हमारा देश भारत सभी विद्याओं का स्रोत देवी-देवताओं से मानता है। संगीत की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती हैं। हमारे देवी-देवताओं के साथ वाद्य-यन्त्रों का दर्शन होता है, यथा- भगवान शंकर के साथ डमरू, विष्णु के साथ शंख, सरस्वती के साथ वीणा, कृष्ण के साथ मुरली, गणेश के साथ मृदंग आदि। धार्मिक ग्रन्थों में विभिन्न प्रकार के वाद्य-यन्त्रों का उल्लेख है। धार्मिक आयोजन संगीत के बिना अधूरा है। ईश्वर-उपासना के लिए मन्दिरों में भजन, गिरजाघरों में साम, गुरुद्वारों में शबद-कीत्तन तो कव्वाली का आरम्भ भी धार्मिक संगीत के रूप में हुआ, यद्यपि यह मस्जिदों में नहीं पहुँच सका। वेद, पुराण, उपनिषद्, ब्राह्मण, रामायण, महाभारत, गीता आदि में संगीत का समावेश है। यहाँ तक कि इसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का भी साधन कहा गया है। अध्यात्म और आनन्द के इस माध्यम को इन्द्र-सभा में अप्सराओं का संगीत-नृत्य, उनके द्वारा पृथ्वी पर तपस्वियों की तपस्या भंग करना, मेनका के घुँघरूओं द्वारा विश्वामित्र को सम्मोहित करना, अर्जुन द्वारा देव-नत्तकी उर्वशी के प्रणय-निवेदन ठुकराये जाने पर शाप देना, मन्दिरों में नियुक्त देवदासियों के प्रति हेय एवं दुर्भावनाग्रस्त दृष्टि रखना आदि ने संगीत को कामोत्तेजना का माध्यम मान लिया।

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
A UGC CARE listed Journal
ISSN 2320–7175 | Volume 10, Issue 01, January-June 2022
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org © The Author(s) 2022

प्रतिष्ठित समाज में संगीत को अवहेलना की दृष्टि से देखा जाने लगा। इसने संगीत के पवित्र रूप को विकृत कर दिया। सभ्य समाज इस कला की उपेक्षा करने लगा। इस कला के प्रति घृणा की दृष्टि फैल गई। परिणामस्वरूप संगीतज्ञों तथा संगीत-प्रेमियों में संकीर्णता का समावेश हो गया और वे संगीत को आम जनता से छुपा कर रखने लगे, संगीत का क्षेत्र संकुचित हो गया। शिक्षित समाज इसे निम्न श्रेणी का समझने लगा। सातवीं शती में संगीत लुप्तप्राय हो गया। परन्तु, मुगलकाल में पुनः संगीत की लहर दौड़ गई। अन्तःपुर के अतिरिक्त राज-दरबारों में संगीतज्ञों की नियुक्तियाँ होने लगीं। पुनः अंग्रेजों ने भारतीय संगीत को लुप्तप्राय बना दिया। 'कुछ ऐसे रियासतों में, जिनमें संगीत की प्रतिष्ठा थी, वे भी अब इस नई पद्धति के शिकार हो गए और संगीत कुछ ऐसे व्यवसायियों के हाथ में पहुँच गया जिसने संगीत को समाज में निम्न कोटि का दर्जा दिया और संगीत इस निम्न सीमा तक ही सीमित रह गया।[1] यह वह काल था जब संगीत को पोषण और संरक्षण की आवश्यकता थी, तभी इस अवनति को दूर करने के लिए देव-स्वरूप मानव ने जन्म लिया जिसने इस अद्वितीय कला को उन्मुक्त किया- पं. विष्णु नारायण भातखण्डे।

संगीत को समर्पित इस विद्वान् ने संगीत के उन्नयन के लिए पूरे देश में भ्रमण किया और सांगीतिक तत्त्वों को एकत्र किया। 'शास्त्रों में वर्णित रागों का प्रायोगिक स्वरूप से कोई सामंजस्य नहीं रह गया था। अतः रागों के वास्तविक स्वरूप के निर्धारण हेतु भातखण्डे जी ने बड़ौदा, दिल्ली, बनारस तथा लखनऊ में चार विराट संगीत सम्मेलनों का आयोजन किया। इन संगीत सम्मेलनों में संगीत-सम्बन्धी अनेक तथ्यों पर गम्भीरतापूर्वक विनिमय हुआ। समस्त प्रचलित रागों को दस थाटों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया गया।'[2] उन्होंने हिन्दुस्तानी संगीत को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया। 'भारत-भ्रमण के बाद भातखण्डे जी ने अपना संशोधन-कार्य शुरू किया। उन्होंने शास्त्र और प्रत्यक्ष-क्रिया, दोनों में सामंजस्य लाने की कोशिश की। गायन विद्या के प्रत्यक्ष क्रिया-रूपी अंग को शास्त्र का आधार देकर ही उसका पुनरुद्धार हो सकता है, इसी दृष्टि से उन्होंने अपना कार्य प्रारम्भ किया।'[3] पं. भातखण्डे ने अनगिनत संगीत ग्रन्थों का संस्कृत, मराठी, अंग्रेजी, हिन्दी भाषा में लेखन तो किया ही जिनमें से मराठी और अंग्रेजी ग्रन्थों का बाद में हिन्दी अनुवाद भी हुआ।

इतना ही नहीं, संगीत-शास्त्र-विषयक अनेक संस्कृत ग्रन्थों का उन्होंने संशोधन भी किया और 'स्वरमेलकलानिधि', 'संगीत रत्नाकर', 'चतुर्दण्डीप्रकाशिका', 'संगीत दर्पण', 'राग तरंगिणी', 'रागतत्त्वविबोध आदि का प्रकाशन किया। ''लक्ष्यसंगीत'' उनका पद्धति ग्रन्थ है जिसकी विवेचना विस्तृत रूप से ''हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति'' के चार बड़े-बड़े भागों में की है। 'लक्ष्य संगीत' की पूरक रचना ''अभिनव राग मंजरी'' है। पद्धति के शास्त्रीय विवेचन के उपरान्त उदाहरणस्वरूप अनेक रागों की लगभग 1875 चीजें अपनी सरल और सुबोध स्वरलिपि पद्धति में बाँधकर ''क्रमिक पुस्तक मालिका'' के छः भागों में प्रस्तुत की हैं। रागों के आरंभिक अध्ययन की स्वरमालिका व स्वरबोध नामक रचनाएँ भी अनुपम हुई हैं। इस प्रकार, स्वर्गीय भातखण्डे का सम्पूर्ण साहित्य, एक सम्पूर्ण चित्र जैसा है जो आज उत्तर भारत की शिक्षण-संस्थाओं और शिक्षार्थियों के लिए पूजनीय हो रहा है।'[4] उनके द्वारा तैयार सहज 'स्वरलिपि पद्धति' संगीत जगत के लिए अनुपम कार्य है। संगीत को आम जनता के लिए सुलभ और सरल बनाने का हर सम्भव प्रयत्न किया।

देश में संगीत के पुनर्जागरण के अग्रणी पं. भातखण्डे ने अनेक पुस्तकालयों में जाकर संगीत के ग्रन्थों का सूक्ष्म अध्ययन किया। अनेक विद्वानों के साथ सांगीतिक चर्चाओं के द्वारा प्राचीन एवं तत्कालीन रागों को विस्तारपूर्वक समझा। अनेक भ्रमणों एवं कई व्यक्तिगत संग्रहालयों में हस्तलखित ग्रन्थों के सांगीतिक तत्त्वों का विश्लेषण, अनेकानेक बन्दिशों की स्वरलिपियाँ तैयार करना, राग-वर्गीकरण की दस थाट-पद्धति, संस्कृत के अतिरिक्त हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू, फारसी आदि

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
A UGC CARE listed Journal
ISSN 2320–7175 | Volume 10, Issue 01, January-June 2022
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org © The Author(s) 2022

भाषाओं के ग्रन्थों को भाषाविदों की सहायता से विश्लेषित करना आदि महत्त्वपूर्ण कार्यों को सम्पादित किया। संगीत के संवर्द्धन एवं प्रचार-प्रसार के लिए मारिस कालेज आफ लखनऊ (वतर्मान में भातखण्डे संगीत विद्यापीठ, लखनऊ), माधव संगीत महाविद्यालय, ग्वालियर, संगीत महाविद्यालय, बड़ौदा आदि द्वारा संगीत का पुनरुद्धार सुनिश्चित किया। संगीत-सम्मेलनों के आयोजन भी मुख्य रूप से कराया। देश भर में विभिन्न विद्यालय, महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालयों में संगीत की विधिवत् शिक्षा का आरंभ हुआ। शिक्षा-जगत् से जुड़ने के बाद संगीतज्ञ स्वच्छन्द स्वाभिमान के साथ जीने लगे। जहाँ प्रयोग-पक्ष के संगीतज्ञ मात्र प्रदर्शन में विश्वास रखते, वे शास्त्र से बिल्कुल अनभिज्ञ थे, अब विचार-मंथन होने लगे। परिणामतः शास्त्र और क्रियात्मकता में सामंजस्य स्थापित किया जाना आवश्यक हो गया अन्यथा शास्त्रों में अलग मत थे और क्रियात्मक रूप में अलग प्रकार प्रचार में थे। दोनों में साम्य बहुत आवश्यक था। यह अशिक्षा का परिणाम था।

इस विरोधाभास के कारण पंडित जी ने अनेक ग्रन्थों का अध्ययन किया और शास्त्रीय सिद्धान्तों तथा क्रियात्मक पक्ष की प्रचलित धारा में सामंजस्य स्थापित करने के लिए इस बहुमूल्य ग्रन्थ 'श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्' की रचना की। शास्त्र एवं प्रयोग दोनों का इस ग्रन्थ में प्रामाणिक समन्वय विद्यमान है। इस ग्रन्थ में लेखक के रूप में पंडित जी ने अपने उपनाम (छद्मनाम) चतुर पंडित का उपयोग किया है जिससे यह ज्ञात हो कि चतुर पंडित कोई अन्य ग्रन्थकार हैं। इसके पीछे भी अकाट्य कारण प्रतीत होता है। उस काल में प्रचलित संगीत का शास्त्र से कोई तारतम्य नहीं था। भारतीय संगीत के शास्त्र व ग्रन्थ संस्कृत में थे और संगीतज्ञ-कलाकार प्रायः अशिक्षित ही थे, परिणामतः प्राचीन संगीत का प्रचलित संगीत से कोई तादात्म्य नहीं था। ऐसी परिस्थिति में विद्वान संगीत मर्मज्ञ-चिन्तक पं. भातखण्डे ने शास्त्र और प्रयोग में सामंजस्य स्थापित करने के उद्देश्य से कार्य आरम्भ कर परिणतिस्वरूप 'श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्' की रचना की जिसमें प्रचलित संगीत के लिए आवश्यक तत्त्वों का दो अध्यायों में निरूपण किया। यह एक कठिन और दुर्लभ कार्य था परन्तु अत्यावश्यक भी क्योंकि संगीत को सम्मानित स्थान दिलाने में ऐसे कार्यों की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी।

तदैव पंडित जी ने छद्म नाम का प्रयोग किया जिससे इस कठिन और नवीन कार्य के सम्पादन के बाद आलोचना के स्वर खुलकर समक्ष प्रस्तुत हो सकें। जिससे यह ज्ञात न हो कि इस ग्रन्थ के लेखक वही हैं जिन्होंने संगीत के उद्धार का बीड़ा उठाया है, जगह-जगह भ्रमण कर संगीत की गूढ़ जानकारी एकत्र करने का कार्य किया है, तथ्यों को नवीनता प्रदान की है अन्यथा शास्त्र की धारा अलग चल रही थी और कलाकारों की कलात्मकता का स्वरूप अलग था। इस भिन्नता को एकाकार करना, एकरूपता प्रदान करना पंडित जी का उद्देश्य था। इस कार्य के उपरान्त दोनों तरह की प्रतिक्रियाएँ आईं। संगीत के मनीषियों ने खुले हृदय से इस कदम का स्वागत किया। तो दूसरी ओर ऐसा भी था जिसने इसकी यह कह कर अवहेलना की कि पं. भातखण्डे ने आलोचना से बचने के लिए नाम-परिवत्र्तन किया है। विशालहृदयी पंडित जी का महती कार्य कब छुप सकता था। सर्वविदित था कि इसे पंडित जी ही कर सकते हैं। इस कार्य ने सम्पूर्ण संगीत-शास्त्र और क्रियात्मक पक्ष में सहजता प्रदान की, परिणामस्वरूप वत्र्तमान संगीत अबाध गति से प्रसारित हो रहा है। इस ग्रन्थ में प्रचलित (वर्तमान) संगीत को ही 'लक्ष्यसंगीत' कहा गया है- 'यदीदानीं प्रचरति लक्ष्यसंगीतमेव तत्।'[5] 'श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्' में दो अध्याय हैं-

1. स्वराध्याय

2. रागाध्याय

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
A UGC CARE listed Journal
ISSN 2320–7175 | Volume 10, Issue 01, January-June 2022
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org © The Author(s) 2022

ग्रन्थकार ने 'स्वराध्याय' में संगीत के शास्त्रीय तत्त्वों का विश्लेषण संगीत- ग्रन्थोक्त सन्दर्भ में किया है। श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, वर्ण, अलंकार, तान, मेल, राग आदि का टिप्पणी सहित निरूपण किया है जिसमें दोनों संगीत पद्धतियों- हिन्दुस्तानी और कर्नाटकी- के ग्रन्थों से सन्दर्भों को लिया गया है।

'रागाध्याय' में पं. भातखण्डे ने हिन्दुस्तानी अर्थात् उत्तर भारतीय संगीत के मेलों (थाटों) और उसके जन्य-रागों का वर्णन जन्य-जनक राग-वर्गीकरण के अनुसार प्रस्तुत किया है। राग-वर्णन के आवश्यकतानुसार सभी तथ्यों का यह सुन्दर समावेश किया गया है। राग-सम्बन्धी कई अन्य तत्त्वों, यथा- आलाप, रूपकालाप, अक्षिप्तिका, आलप्ति, स्वस्थान आदि को भी संक्षिप्त रूप में समाहित किया गया है। राग-वर्णन के अतिरिक्त वाग्येयकार और गायक के गुण-दोष, सुशारीर-वर्णन के पश्चात् संगीत के शास्त्र और क्रियात्मक पक्ष की आवश्यकता पर बल देते हुए 'श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्' ग्रन्थ के उद्देश्य और ग्रन्थ-रचना-तिथि के साथ समापन किया है।

पं. भातखण्डे प्रणीत 'श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्' का द्वितीय अध्याय है- 'रागाध्याय'। इस अध्याय में कुल 1054 श्लोक हैं। इस अध्याय में श्लोकों की संख्या का क्रम जगह-जगह अवरूद्ध हुआ है। हर नया अंश क्रम सं. 01 से आरम्भ होता है, यद्यपि यह क्रम-निर्देश भी भंग हुआ है। प्रत्येक 100 की संख्या के बाद 01 आता है। एक-समान संख्या-क्रम नहीं हैं। अलग-अलग सभी संख्याओं को जोड़ने से 1054 श्लोकों की संख्या बनती है। इस अध्याय का आरम्भ इस श्लोक से होता है-

''अथ श्रीलक्ष्यसंगीत द्वितीयाध्याय ईर्यते।

चतुराख्येन भरतपूर्वखंडनिवासिना।। 1।।''

इसके बाद 'रागजनकदशमेलसंकेतः' से रागाध्याय का विषय-प्रवेश होता है- शास्त्रों में जो 72 मेल कहे गए हैं, वे अनावश्यक हैं, आवश्यकतानुरूप यहाँ प्रचलित संगीत के प्रसिद्ध दस मेल (थाट) ही स्वीकार्य हैं। इन मेलों के अन्तर्गत सभी राग समाहित हो जाते हैं। यहाँ राग-संगीत का अपने स्वरूप के कारण चतुर पण्डित ने इसे 'रूप-संगीत' की संज्ञा दी है- 'प्रचरद्रूपसंगीतमशेषं'। जनक-जन्य मेल का सिद्धान्त प्राचीन काल में भी प्रचलित था। मेल को ही 'थाट' कहा गया है। इस ग्रन्थ में प्रचलित दस मेलों का ही उपयोग किया गया है। थाटों की संख्या इससे भी कम की जा सकती है परन्तु यह राग-वर्गीकरण में कठिनाइयों को न्यौता देगा, ऐसा भी कहा है। शुद्ध सप्तक के प्रत्येक स्वर को षड्ज मानकर शुद्ध स्वरों की स्वरावली से छः मेल प्राप्त हो जाते हैं, वे हैं- बिलावल, काफी, भैरवी, कल्याण, खमाज और आसावरी। शुद्ध-विकृत भेद द्वारा दूसरे मेल भी आसानी से बन सकते हैं। इस प्रकार, सभी रागों का इसमें समावेश हो सकता है। इसी प्रकार-भेद से सम्भवतया प्राचीन विद्वानों ने छः पुरुष राग, उनकी भार्याएँ, पुत्र-राग आदि प्राप्त किया है। इस राग-रागिनी भेद में राग-रूपों के लिए एकमत होना आवश्यक है। स्पष्ट है कि इस वर्गीकरण में मत-भिन्नता की ओर पंडित जी ने एकाग्र ध्यान आकर्षित किया है। उनके अनुसार दस थाटों के अन्तर्गत रागों का वर्गीकरण अधिक समीचीन है। आगे, दस थाटों के नाम श्लोक सं. 16 से 18 में दर्शाया है- कल्याणी, बेलावली, खमाज, भैरव, पूर्विका, मारवा, काफी, आसावरी, भैरवी, और तोड़िका। इनके लक्षण भी दिए गए हैं। इन दस थाटों के दाक्षिणात्य नाम क्रमशः इस प्रकार हैं- (मेच) कल्याणी, शंकराभरण, काम्भोजी, मालवगौड, कामवर्धिनी, गमनश्रम, खरहरप्रिया, नटभैरवी, हनुमत तोड़ी और पन्तुवराली। प्रत्येक थाट से जन्य-रागों के नाम यथानिर्दिष्ट हैं-

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
A UGC CARE listed Journal
ISSN 2320–7175 | Volume 10, Issue 01, January-June 2022
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org © The Author(s) 2022

- **कल्याण-** इमन, शुद्धकल्याण, भूपाली, चन्द्रकान्त, जयत्कल्याण, पूरिया कल्याण, हिन्दोल, मालश्री, केदार, हम्मीर, कामोद, छायानट, श्याम कल्याण, गौरसांरग
- **बेलावली**- बिलावल, अल्हैया विलावल, शुक्ल बिलावल, देवगिरी बिलावल, यमनी बिलावल, दुर्गा, सरपरदा, ककुभ बिलावल, नट बिलावल, लच्छासाख, शंकरा, देशकार, विहाग, हेमकल्याण, मलूहा केदार, नट, माण्ड, गुण्कली, पहाड़ी
- **खमाज**- खमाज, झिंझोटी, सोरठी, देश, खम्भावती, तिलंग, दुर्गा, रागेश्वरी, जयावन्ती, गारा, तिलककामोद
- **भैरव**- भैरव, कलिंग (कलिंगड़ा), मेघ रंजनी, सौराष्ट्र भैरव, जोगिया, रामकली, प्रभात, विभास, बंगाल भैरव, शिवभैरव, आनन्द भैरव, अहिर भैरव, ललित पंचम, गुणक्री
- **पूर्वी**- पूर्वी, गौरी, रेवा, श्री, दीपक, त्रिवेणी, मालवी, टंकी, जैताश्री, बसन्त, पूरियाधनाश्री, परज
- **मारवा-** मारवा, पूरिया, ललित, सोहनी, वराटी, जैत, भंखार, विभास, भटियार, साजगिरी, मालीगौरा, पंचम, ललितागौरी
- **काफी**- धनाश्री, सैन्धवी, काफी, धानी, भीमपलासी, प्रदीपकी, पीलू, हंस-किंकिणी, बागेश्री, बहार, सुहा, सुघराई, देशाख्य, कौशिक, शहाना, नायकी, मध्यमादि सारंग, शुद्ध सारंग, वृन्दावनी, सामन्त, मियां की सारंग, बड़हंस, शुद्ध मल्हार, पटमंजरी, गौड़ मल्हार, सूर मल्हार, रामदासी मल्हार, मियाँ मल्हार, मेघ मल्हार
- **आसावरी-** आसावरी, जौनपुरी, गान्धारी, देशी, खट, सिन्धु भैरवी, कौशिक, दरबारी कान्ड़ा, अड़ाना, यवनप्रिय, झीलफ
- **भैरवी**- भैरवी, मालकौंस, विलासखानी तोड़ी
- **तोड़ी**- तोड़ी, गुर्जरीतोड़ी, मुल्तानी

यहाँ तक के विषय-वस्तु को कुल 58 श्लोकों में समाहित किया गया है। तदुपरान्त पुनः श्लोक संख्या 01 से 45 तक कल्याण मेल-जन्य रागों के अन्तर्गत यमन, शुद्ध कल्याण और भूपाली इन तीन रागों का विभिन्न ग्रन्थों के अनुसार विस्तृत वर्णन किया गया है। इसके बाद श्लोक सं.-46 से 55 तक टीका सहित 'संगीत रत्नाकर' ग्रन्थ के अनुसार आलाप, रूपकालाप, आक्षिप्तिका, आलप्ति, स्वस्थान आदि का विस्तृत वर्णन है। पुनः श्लोक सं. 56 से 131 तक कल्याणमेल जन्य रागों की विवरणी दी गई है जिसमें जयत्कल्याण, पूरिया कल्याण, चन्द्रकान्त, हिण्डोल, मालश्री, हमीर, केदार, कामोद, छायानट, श्यामकल्याण, गौड़ सारंग का वर्णन है जिसमें अनेक ग्रन्थों से सन्दर्भों को लिया गया है।

इसी प्रकार, बिलावल मेलजन्य राग पुनः श्लोक सं. 01 से 131, खमाज मेल जन्य राग श्लोक सं. 01 से 69, भैरव मेलजन्य राग श्लोक सं. 01 से 87, पूर्वी मेल जन्य राग शलेक सं. 01 से 107, मारवा मेल जन्य राग श्लोक सं. 01 से 85, काफी मेल जन्य राग श्लोक सं. 01 से 225, आसावरी मेल जन्य राग श्लोक सं. 01 से 68, भैरवी मेल जन्य राग श्लोक सं. 01 से 21 तथा तोड़ी मेल जन्य राग श्लोक सं. 01 से 24 तक में यथास्थान प्राचीन ग्रन्थों के उद्धरणों के साथ विश्लेषित किए गए हैं।

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
A UGC CARE listed Journal
ISSN 2320–7175 | Volume 10, Issue 01, January-June 2022
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org © The Author(s) 2022

'लक्ष्य' संज्ञा और इसके अर्थानुरूप ग्रन्थ में वर्ण्य-विषयों का सम्पादन किया गया है। जैसा कि पूर्व में ही उल्लेख किया गया है कि यहा 'लक्ष्य' का तात्पर्य प्रचलित वा वत्तमान से है। तदनुरूप इस अध्याय में भी वैसे ही रागों को लिया गया है जो प्रचलित हैं। साथ ही, पूर्व ग्रन्थोक्त राग-रागिनी वर्गीकरण को आधार न बना कर जनक-जन्य वर्गीकरण के आधार पर रागाध्याय में रागों को दस थाटों के अन्तर्गत समाहित करने की ही प्रक्रिया अपनाई गई है क्योंकि राग-रागिनी वर्गीकरण का आधार अद्यतन ज्ञात नहीं हो सका है, अमुक राग है, अमुक रागिनी है अथवा पुत्र या पुत्र-वधू, यह कैसे निर्धारित किया गया, एक मत में जो राग है दूसरे में उसे रागिनी भी कहा गया है अर्थात् इनमें मतैक्य नहीं है। अतः इसे पंडित जी ने अस्वीकार किया है और थाट-राग-वर्गीकरण को उपयुक्त माना है। 'रागाध्याय' शीर्षक द्वितीय अध्याय में यद्यपि संक्षिप्त राग-वर्णन है परन्तु इसमें राग से संबंधित उन सभी तत्त्वों का निष्पादन किया गया है जो राग के लिए सर्वथा आवश्यक हैं। राग-स्वरूप, वादी-सम्वादी के अतिरिक्त उसके ऐतिहासिक परिदृश्य तथा उसके विभिन्न ग्रन्थोक्त नाम तथा स्वरूप को भी दर्शाया गया है। रागोचित टिप्पणियों में इसे सुन्दर समालोचित किया गया है। कल्याणमेलजन्य रागों के वर्णन के क्रम में कल्याण राग की अभिव्यक्ति के सन्दर्भ में बहुत सुन्दर चित्रण इस प्रकार है-

''सन्धि प्रकाशरागाणां रिधयोर्मृदुता ततः।

कल्याणमेलमारभ्य तीव्रत्वे परिवर्तिता।। 18।।

परिवत्तनमप्येतद्भवेतद्रक्तिप्रदायकम्।

भिन्नरससमास्वादान्मनो हर्ष प्रपद्यते।। 19।।''

अर्थात् सन्धिप्रकाश रागों में ऋषभ और धैवत की मृदुता कल्याण मेल में तीव्रता में बदल जाती है जो अत्यन्त रक्तिदायक होता है। रस-परिवत्तन तो आस्वादन में हर्ष अर्थात् आनन्द का प्रतिवादन करता ही है। तात्पर्य है कि सन्धि प्रकाश रागों में प्रमुख लक्षण ऋषभ-धैवत की मृदुता है और इसके बाद ही तीव्र ऋषभ-गान्धार-धैवत वाले रागों का समय निर्धारित किया गया है। स्पष्ट है कि कल्याण थाट के राग इसी श्रेणी में आते हैं।

रागों के निष्पादन के क्रम में पंडित भातखण्डे ने संगीतरत्नाकर (मूल ग्रन्थ तथा कल्लिनाथ एवं सुधाकर टीका सहित) के अतिरिक्त अनूप संगीतरत्नाकर (भावभट्ट), हृदयकौतुक, हृदयप्रकाश (हृदय नारायण), रागतरंगिनी (लोचन), संगीत दर्पण (दामोदर पण्डित), संगीत पारिजात (अहोबल), राग विवोध (पुंडरीक विट्ठल, सोमनाथ), सद्रागचन्द्रोदय (पुं. विट्ठल), रागमाला (पुं. विट्ठल), रागमंजरी (पुं. विट्ठल) आदि ग्रन्थों के उद्धरणों के साथ-साथ दाक्षिणात्य मतों को भी यथास्थान आवश्यकतानुसार उद्धृत किया है। इससे 'चतुरपण्डित' के वृहद् ग्रन्थ-अध्ययन का भी अनुमान स्वतः हो जाता है। 'लक्ष्यसंगीत' ग्रन्थ के इस अध्याय के अध्ययन से राग से सम्बन्धित सम्पूर्ण व्यावहारिक शास्त्रोक्त दर्शन भी हो जाता है। 'भातखण्डे जी ने पारम्परिक रागों का सूक्ष्म शास्त्रीय विश्लेषण और विवेचन कर सामान्य सिद्धान्तों और नियमों की रचना की। उनके द्वारा प्रतिपादित ठाठ-राग-पद्धति को विद्वानों की ओर से व्यापक समर्थन प्राप्त हुआ। संगीत की आत्मा को छूकर उन्होंने ठाठ और राग वर्गीकरण के मूलभूत और शाश्वत आधारों का सृजन किया'।[6]

इन मेलजन्य रागों के वर्णन के बाद पुनः श्लोक सं. 01 से 10 तक संगीतरत्नाकरोक्त उत्तम वाग्गेयकार के 28 लक्षण 'वाग्गेयकार लक्षणम्' के अन्तर्गत दिए गए हैं तथा मध्यम और अधम वाग्गेयकार के लक्षण भी वर्णित हैं। आगे 'संगीत रत्नाकर' से ही उत्तम गायक के 22 लक्षणों के साथ मध्यम और अधम गायक के लक्षण भी सन्दर्भित हैं। श्लोक सं. 01

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
A UGC CARE listed Journal
ISSN 2320–7175 | Volume 10, Issue 01, January-June 2022
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org © The Author(s) 2022

से 14 तक गायकों के पाँच भेद- शिक्षाकार, अनुकार, रसिक, रंजक तथा भावुक भी 'संगीतरत्नाकर' से ही उद्धृत हैं। एकल, यमल तथा वृन्द- ये तीन प्रकार गायकों के कहे गए हैं-

'एकलो यमलो वृंदगायनश्चेति ते विद्या

एक एव तु यो गायेदसावेकलगायनः।।

सद्वितीयो यमलकः सवृन्दो वृन्दगायनः।'[7]

इसके बाद गायिका लक्षण इस प्रकार हैं- रूप-यौवनसम्पन्ना, अत्यन्त मधुर ध्वनियुक्ता। 'सदोषगायनलक्षणम्' में गायकों के 25 दोष भी कहे गए हैं जिसका वर्णन पं. भातखण्डे ने यहाँ किया है। 'सुशारीरलक्षणम्' के अन्तर्गत 'शारीर' के सन्दर्भ में इस प्रकार उद्धृत किया गया है-

रागाभिव्यक्तिशक्त्वमनभ्यासेऽपि यद्ध्वनेः।

तच्छारीरमितिप्राक्तं शरीरेण सहोद्भवात्।।[8]

अर्थात् बिना अभ्यास के भी जिसकी कण्ठ-ध्वनि रागाभिव्यक्ति की क्षमता रखता हो, उसे 'शारीर' कहा गया है।

तार, अनुध्वनि, माधुर्य, रक्ति, गाम्भीर्य, मार्दव, घनता, स्निग्धता, कान्ति तथा प्राचुर्य- ये सुशारीर के गुण हैं। अनुध्वानविहीनता, रूक्षता, रक्तिहीनता, निःसारता, विस्वरता, काकित्व, स्थानविच्युति, काश्र्य, कार्कश्य- ये सुशारीर के दोष भी हैं। अन्त में, 'प्रस्तुतसंगीतस्थितिः' के अन्तर्गत संगीत की स्थिति का वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है। इस मार्मिक दृश्य को इस प्रकार स्पष्ट चित्रित किया है-

अस्मात्संगीतं स्वायत्तीकृतमशिक्षितैर्जनैः।

अतोऽत्र दोषबाहुल्यं स्वभावादुपलभ्यते।।[9]

अर्थात् हमारे संगीत पर अशिक्षित व्यक्तियों का आधिपत्य है। अतः बहुत स्वाभाविक है कि इसमें दोषों की बहुलता है। इसके कारण ही संगीत के शास्त्र और क्रियात्मक पक्ष के बीच परस्पर तादात्म्य का अभाव रहा। संगीत में मोहिनी स्वरूप विद्यमान है, तदनुकूल प्रभाव श्रोताओं पर पड़ता है परन्तु ऐसे विद्वानों की संख्या अत्यल्प है जो नियम के ज्ञाता हों। ग्रन्थकार एकमत नहीं हैं, अतः ऐसे ग्रन्थ का भी अभाव ही है जो समान रूप से सर्वोपयोगी हो। पं. भातखण्डे ने 'श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्' की रचना के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए लिखा है-

नैव द्रव्यार्जनोद्देशः शंकनीयोऽत्र कश्चन।

संगीतेष्टाध्वशिक्षार्थं यत्नस्त्वेष मया कृतः।।[10]

विद्यार्थियों की अपेक्षा सुयोग्य शिक्षकों की आवश्यकता पर भी बल दिया है। इस प्रकार, गहन चिन्तन-अध्ययन के साथ 'श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्' का द्वितीय अध्याय 'रागाध्याय' प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना तिथि के वर्णन के साथ समाप्त होता है-

शाके शाकांकगुणनाममहीमिताब्दे।

मासे मघौ सितदले प्रथमेह्नि सोमे।

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
A UGC CARE listed Journal
ISSN 2320–7175 | Volume 10, Issue 01, January-June 2022
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org © The Author(s) 2022

लक्ष्याद्यकारि चतुराह्वयपण्डितेन

संगीतकं भरतखंडनिवासिनेदम्।।[11]

अर्थात् चैत्र शुक्ल प्रतिपदा सोमवार 1831 शक को इस ग्रन्थ को पूर्णता प्राप्त हुई है। तदनुसार 22 मार्च 1909 तिथि सुनिश्चित होती है।

परिणाम

इस ग्रन्थ के गहन अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि 'पं. विष्णु नारायण भातखण्डेकृत 'श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्' किस प्रकार बहुमूल्य और उपयोगी ग्रन्थ है जिसने पंडित जी के विद्वतापूर्ण सूक्ष्म दृष्टिकोण से हमें परिचित कराया है। पंडित जी का आविर्भाव एक ऐसे काल में हुआ जब संगीत में अनेक भ्रान्तियाँ थीं, उन्होंने हमें उन तथ्यों से मात्र अवगत ही नहीं कराया बल्कि उनका निराकरण भी किया। उन्होंने प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन कर उनमें उपयोगी उद्धरणों के द्वारा संगीत के वत्र्तमानस्वरूप को निर्धारित किया है। आज पूरे उत्तर भारतीय संगीत का यह शास्त्रीय आधार ग्रन्थ है।

निष्कर्ष

शास्त्रीय मत एवं प्रयोग अथवा प्रचलन में शिक्षा के अभाव में समन्वय की कमी थी जिसका निराकरण अत्यन्त आवश्यक था। शिक्षा के अभाव में गुरुमुखी कला-प्रेमी इसके शास्त्रीय सिद्धान्तों से सर्वथा अनभिज्ञ थे, ऐसे में शिक्षालयों की व्यवस्था और शिक्षालयों में शास्त्र तथा क्रियात्मकता में तारतम्य-बोध कराना अति आवश्यक था। इस तारतम्य से ही वांछित परिणाम प्राप्त हो सकते हैं। पं. भातखण्डे यदि शास्त्र और प्रयोग के इस असमान प्रचलित परम्परा की ओर आकृष्ट न करते तो आज भी संगीत का निराधार निर्वहण ही होता रहता। वह प्रतिष्ठा न होती जो आज सर्वविदित है। इस ओर जागृति की आवश्यकता थी जिससे शास्त्रीय आधारों को सम्पुष्ट किया जा सके। इस दृष्टिकोण से यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और बहुलाभदायक है। इस ग्रन्थ का बहुविध शोध-अध्ययन किया जा सकता है। यहाँ इस ग्रन्थ का एक समेकित अध्ययन प्रस्तुत किया गया है जिस पर यथा आवश्यक संश्लिष्ट दृष्टि प्राप्त हो सके। इस ग्रन्थ के अध्ययन से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि शास्त्र और प्रयोग में एकरूपता अति आवश्यक है।

कृतज्ञता ज्ञापन- इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद विद्वान् संगीतज्ञ स्व. पं. गुणवन्त माधवलाल व्यास ने किया। इसे शिक्षा तथा समाज कल्याण मन्त्रालय, भारत सरकार की विश्वविद्यालय ग्रन्थ योजनान्तर्गत मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी द्वारा 1981 में प्रकाशित किया गया। पं. व्यास द्वारा अनुदित ग्रन्थ की छायाप्रति लेखिका के विशेष आग्रह पर अध्ययन हेतु उनके सुपुत्र पं. दीपक गुणवन्त व्यास ने उपलब्ध कराया। इस हेतु उन्हें सादर आभार। इसके साथ ही, इस अध्ययन में सन्दर्भित सभी ग्रन्थों तथा पत्र-पत्रिकाओं के लेखकों को भी हार्दिक आभार।

संदर्भ

1. काव्या, लावण्य कीर्ति सिंह, पं. ओंकारनाथ जी ठाकुर एवं उनकी शिष्य-परम्परा, शिवम् सांस्कृतिक मंच, छपरा, 1998, पृ.-03
2. सिंह, कु. अनुपमा, हिन्दुस्तानी संगीत की समृद्धि एवं गौरव के प्रतीक पं. विष्णु नारायण भातखण्डे, संगीत, मासिक पत्रिका, संगीत कार्यालय, हाथरस, अगस्त 1999, पृ.- 04
3. पटवर्धन, एन.वी., विष्णु नारायण भातखण्डे, संगीत, मासिक पत्रिका, संगीत कार्यालय, हाथरस, अगस्त 1986, पृ.-15

4. दूबे, सुदामा प्रसाद, अपनी ओर से, भातखण्डे संगीत शास्त्र, भाग-1, संगीत कार्यालय, हाथरस, 1951, पृ.- 5-6
5. पंडित, चतुर, स्वराध्याय, श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्, प्रकाशक- श्री भा.सी. सुकथनकर शक 1855, श्लोक सं.- 77
6. तैलंग, उल्लास, संगीत-ऋषि पं. विष्णु नारायण भातखण्डे, संगीत मासिक पत्रिका, संगीत कार्यालय, हाथरस, अगस्त 2002, पृ.- 24
7. पंडित, चतुर, रागाध्याय, उत्तमगायनलक्षणम्, प्रकाशक- श्री भा.सी. सुकथनकर शक 1855, श्लोक सं.- 58-59 (द्रष्टव्य- शारंगदेव, संगीत रत्नाकर, 3-22-23)
8. पंडित, चतुर, रागाध्याय, सुशारीरलक्षणम्, श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्, प्रकाशक- श्री भा.सी. सुकथनकर शक 1855, श्लोक सं. 63
9. पंडित, चतुर, रागाध्याय, प्रस्तुतसंगीतस्थितिः, श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्, प्रकाशक- श्री भा.सी. सुकथनकर शक 1855, श्लोक सं. 67
10. वही, श्लोक सं. 79
11. पंडित, चतुर, रागाध्याय, श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्, प्रकाशक- श्री भा.सी. सुकथनकर शक 1855, अंतिम श्लोक सं.- 86